॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय

कठरुद्रोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

संन्यासकी विधि और आत्मतत्त्वका वर्णन

हरिः ॐ एक समय देवगण भगवान् प्रजापतिके पास गये और बोले—भगवन्! हमें ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये। भगवान् प्रजापति बोले—"शिखासहित केशोंका मुण्डन करा और यज्ञोपवीतका त्याग करके, पुत्रको देखकर यों कहे—'तुम ब्रह्मा हो, तुम यज्ञ हो, तुम वषट्कार हो, तुम ॐकार हो, तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा हो, तुम धाता हो, तुम विधाता हो, तुम प्रतिष्ठा हो।' तब पुत्र कहे, 'मैं ब्रह्मा हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वषट्कार हूँ, मैं ॐकार हूँ, मैं स्वाहा हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं धाता हूँ, मैं विधाता हूँ, मैं त्वष्टा हूँ, मैं प्रतिष्ठा हूँ।' परिव्राजक (संन्यासी) होकर घरसे निकलनेपर जब पुत्र-कलत्रादि पीछे-पीछे चलें तो उनको देखकर अश्रुपात न करे। यदि अश्रुपात करेगा तो सन्तानका नाश हो जायगा। फिर वे सब लोग संन्यासीकी प्रदक्षिणा करके इधर-उधर बिना देखे लौट जाते हैं। ऐसा संन्यासी देवलोकका अधिकारी होता है।"

"ब्रह्मचारीके रूपमें वेदोंका अध्ययन करने एवं वेद-शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्यका पालन करनेके पश्चात् विवाहपूर्वक पुत्रोंको उत्पन्न करके, उनको सुसंस्कृत बना, यथाशक्ति यज्ञ-हवन करके अपने बन्धु-बान्धवों तथा गुरुजनोंसे अनुज्ञा प्राप्तकर संन्यास ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार संन्यास ग्रहण करनेवाला वनमें जाकर बारह रात्रियोंतक दुग्धसे अग्निहोत्र करे, बारह रात्रियोंतक केवल दुग्धाहारपर रहे। बारह रात्रियोंके अन्तमें विष्णुसम्बन्धी तथा प्रजापतिसम्बन्धी चरुको, जो तीन मिट्टीकी ठीकरियोंपर सिद्ध किया गया हो, वैश्वानर अग्नि तथा प्रजापतिके उद्देश्यसे हवनकर अग्निहोत्रमें प्रयुक्त दारुपात्रोंको भी अग्निमें होम दे। मिट्टीके पात्रोंका जलमें विसर्जन कर दे और तैजस—स्वर्णादिके बने पदार्थोंको अपने गुरुको प्रदान कर दे। उस समय यों कहे—'तू मुझे छोड़कर दूर न जाना, और मैं तुम्हें छोड़कर दूर नहीं जाऊँगा।' कुछ शास्त्रोंके मतसे, इसके पश्चात् गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय—इन तीनों प्रकारकी यज्ञाग्नियोंसे अरणियोंके पाससे भस्मकी मुष्टि लेकर पान करे। शिखासहित केशोंका वपन कराके और यज्ञोपवीत उतारकर '**ॐ भूः स्वाहा**' इस मन्त्रसे जलमें डाल दे। इसके बाद अनशन, जलप्रवेश, अग्निप्रवेश, वीरोंके मार्गोंका ग्रहण करके (पाण्डवोंकी भाँति) महाप्रस्थान करे अथवा किसी वृद्ध संन्यासीके आश्रममें चला जाय। दुग्ध अथवा जलके साथ जो कुछ वह भोजन करे, वही उसका सायंकालीन हवन है; प्रातःकाल जो भोजन करे, वही प्रातःकालीन हवन है। अमावास्याको जो भोजन करता है, वही दर्श-यज्ञ है। पूर्णिमाको जो भोजन करता है, वह उसका पौर्णमास्य यज्ञ है। वसन्त-ऋतुमें जो वह केश, दाढ़ी, मूँछ, शरीर-रोएँ, नख आदि कटवाता है, वह उसका अग्निष्टोम है। संन्यास लेनेके बाद पुनः अग्न्याधान न करे, '**मृत्युर्जयमावहम्**' इत्यादिक आध्यात्मिक मन्त्रोंका पाठ करे। '**स्वस्ति सर्वजीवेभ्यः**'—सब जीवोंका कल्याण हो, यह कहकर

केवल आत्मतत्त्वका ध्यान करता हुआ, ऊपर हाथ उठाये प्रपञ्चातीत पथमें विचरण करे, गृहहीन होकर विचरण करे। भिक्षान्नके सिवा और कुछ ग्रहण न करे। थोड़ी देर भी एक जगह न ठहरे, जीव-हिंसासे बचनेके लिये केवल वर्षाकालमें भ्रमण न करे।''

''इस विषयमें दूसरे श्लोक भी हैं, जिनका भाव इस प्रकार है—'संन्यासीको चाहिये कि वह कुण्डिका, चमस तथा शिक्य (झोली) आदिको तथा तिपाई, जूते, शीतको दूर करनेवाली कन्था (कथरी), कौपीनके ऊपर अङ्ग ढकनेवाला वस्त्र, कुशका बना पवित्र, स्नानके अनन्तर धारण करनेका वस्त्र तथा उत्तरीय वस्त्र, यज्ञोपवीत एवं वेदाध्ययन—सबका त्याग कर दे। वह अपना स्नान, पान तथा शौच पवित्र जलके द्वारा सम्पादन करे। नदीके किनारे जाकर सोये या देवमन्दिरमें सोये। अत्यधिक आराम न करे अथवा आयासके द्वारा शरीरको व्यर्थ कष्ट न दे, दूसरोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न न हो और निन्दा सुनकर गाली या शाप न दे। संन्यासी प्रमादरहित होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताये। स्त्रियोंका दर्शन, स्पर्श, केलि—क्रीडा, चर्चा, गुह्य (कामसम्बन्धी) विषयोंकी बातचीत, काम-सङ्कल्प, सम्भोगके लिये प्रयत्न तथा सम्भोगकी क्रिया—ये आठ प्रकारके मैथुन विचारवान् पुरुषोंने गिनाये हैं। उपर्युक्त अष्टविध मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यका पालन मुमुक्षुजनोंको करना चाहिये''॥ १—६॥

''जो जगत्का प्रकाशक है, नित्य प्रकाशके रूपमें अपने द्वारा ही प्रकाशित है, वही जगत्का साक्षी है, निर्मल आकृतिवाला सबका आत्मा है। वह प्रज्ञानघनस्वरूप है, सब प्राणी उसीमें प्रतिष्ठित हैं। मनुष्य न कर्मके द्वारा, न संतानके द्वारा और न अन्य किसी साधनके द्वारा—बल्कि ब्रह्मानुभवके द्वारा ही ब्रह्मको प्राप्त कर सकता है। वह सत्य-ज्ञान-आनन्दरूप अद्वितीय ब्रह्म इस माया, अज्ञान, गुहा आदि नामोंसे कहे जानेवाले संसारमें व्याप्त है तथा केवल विद्याके द्वारा जाना जाता है। जो परम व्योम नामक नित्य धाममें विराजमान इस ब्रह्मको जानता है, वह द्विजश्रेष्ठ क्रमशः सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है—पूर्णकाम हो जाता है। अज्ञान और मायाशक्तिके साक्षी प्रत्यगात्माको जो 'मैं एक ब्रह्मस्वरूप हूँ' यों जानता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है॥ ७—१२॥

''पूर्वोक्त शक्तियुक्त इस ब्रह्मस्वरूप आत्मासे उसी प्रकार अपञ्चीकृत आकाश अर्थात् शब्द-तन्मात्र उत्पन्न हुआ, जैसे रज्जुमें सर्पका भान होता है। पुनः आकाशसे वायुसंज्ञक अपञ्चीकृत स्पर्श-तन्मात्र उत्पन्न हुआ। वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई। उन सूक्ष्म भूतोंको शिवरूप ईश्वरने पञ्चीकृत करके उन्हींसे ब्रह्माण्ड आदिकी सृष्टि की। ब्रह्माण्डके भीतर प्राणियोंके पुराकृत कर्मोंके अनुसार देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियोंकी सृष्टि हुई तथा अस्थि, स्नायु आदिसे निर्मित यह प्राणियोंका शरीर भी कर्मानुसार ही प्रकाशित हो रहा है। समस्त शरीरधारियोंका यह जो अन्नमय आत्मा—स्थूल शरीर प्रकाशित हो रहा है, उससे भिन्न एक प्राणमय आत्मा और है, जो इस अन्नमय आत्माके भीतर स्थित है। उससे भी सूक्ष्म दूसरा विज्ञानमय आत्मा है, जो प्राणमय आत्माके भी भीतर स्थित है। उससे भी सूक्ष्म आनन्दमय आत्मा है, जो विज्ञानमय आत्माके भी भीतर है। अन्नमय आत्मा प्राणमयसे भरा है, उसी प्रकार प्राणमय आत्मा स्वभावतः मनोमय आत्मासे पूर्ण है। मनोमय आत्मा विज्ञानमयसे पूर्ण है। सदा सुखस्वरूप विज्ञानमय आत्मा आनन्दसे पूर्ण रहता है। उसी प्रकार आनन्दमय आत्मा अपनेसे भिन्न साक्षिरूप सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी ब्रह्मके द्वारा पूर्ण है। वह ब्रह्म किसी दूसरेके द्वारा नहीं, बल्कि स्वतः सब ओरसे पूर्ण है। जो यह सत्य एवं ज्ञानस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म है, वही सबका पुच्छ—आधार है। वह सबका सार एवं रसमय (आनन्दस्वरूप) है। उस सनातन तत्त्वको प्राप्तकर यह देही सर्वत्र सुखी होता है। इसके सिवा अन्यत्र सुखता कहाँ है? अखिल प्राणियोंके आत्मस्वरूप इस परानन्द ब्रह्मके न होनेपर कौन मानव जीता रह सकता है अथवा कौन प्राणी नित्य चेष्टा करता है? अतएव सर्वान्तर्यामी-रूपसे जो चित्तमें भासित होता है, वही परमपुरुष दुःखोंसे घिरे हुए जीवात्माको सदा आनन्द प्रदान करता है॥ १३—२५॥

''जो अदृश्यत्व आदि लक्षणोंसे युक्त इस परतत्त्वसे अभेदरूप परमाद्वैतको प्राप्त कर लेता है, वही महासंन्यासी है। सद्रूप परब्रह्म जो देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न है, वही अभयपद है, परम

कल्याणस्वरूप है, परम अमृत है। जबतक मनुष्यको इससे थोड़ा भी अन्तर—व्यवधान दीख पड़ता है, तबतक उसे (जन्म-मृत्युका) भय है—इसमें संदेह नहीं। भगवान् विष्णुसे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र तृणपर्यन्त सभी तारतम्यके अनुसार नित्य इसी आनन्दकोषसे आनन्द प्राप्त करते हैं। इस लोक तथा परलोकके भोगोंसे विरक्त, प्रसन्न चित्तवाले श्रोत्रियको यह स्वरूपभूत आनन्द स्वयं ही अनुभूत होता है—उसी प्रकार जैसे स्वयं परमात्माके अंदर होता है। शब्दकी प्रवृत्ति किसी निमित्तको लेकर होती है। परतत्त्वमें निमित्तका अभाव होनेसे वाणी वहाँसे लौट आती है। जो सब विशेषोंसे रहित परानन्दरूप तत्त्व है, वहाँ शब्दकी प्रवृत्ति कैसे हो। इस कारण यह मन सूक्ष्म और व्यावृत अर्थात् सीमित शक्तिसम्पन्न होकर सर्वत्र गमन करता है; क्योंकि श्रोत्र, त्वक्, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा शब्द, स्पर्श आदि उनके विषय एवं वाक्, पाणि आदि कर्मेन्द्रियाँ सीमित शक्तिसम्पन्न हैं। अतएव परतत्त्वको प्राप्त करनेमें ये समर्थ नहीं हैं। जो साधक उस द्वन्द्वरहित, निर्गुण, सत्यस्वरूप और विज्ञानघन ब्रह्मानन्दको 'यह मेरा ही स्वरूप है'—इस प्रकार जान लेता है, उसे कहीं भी भय नहीं होता। इस प्रकार जो अपने इन्द्रियोंका स्वामी अपने गुरुके उपदेशसे आत्मसाक्षात्कारके द्वारा ब्रह्मानन्दको जानता है, वह साधु-असाधु कर्मोंके द्वारा कभी संतप्त नहीं होता। विषय तापक हैं और चित्त ताप्य है; चित्त और उसके विषयोंसे यह अखिल जगत् विभासित हो रहा है, परन्तु वेदान्त-शास्त्रके वाक्योंके ज्ञानसे यह प्रत्यगात्माके रूपमें अनुभूत होता है। शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव, ब्रह्म, ईश्वर-चैतन्य, जीव-चैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल—ये सप्तविध तत्त्व कहे गये हैं, जिनमें व्यवहारको लेकर भेद है। मायाकृत उपाधियोंसे अत्यन्त मुक्त ब्रह्म—शुद्ध चैतन्य कहलाता है। मायाके सम्बन्धसे वह ईश है, अविद्याके वशीभूत वही जीव है तथा अन्तःकरणके सम्बन्धसे वही प्रमाता—ज्ञाता कहलाता है। उस अन्तःकरणकी वृत्तिके सम्बन्धसे वह प्रमाण-संज्ञाको प्राप्त होता है। वह चैतन्य जबतक अज्ञात है, तबतक प्रमेय-कोटिमें आता है और वही ज्ञात हो जानेपर फल कहलाता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष अपने-आपको 'मैं सब उपाधियोंसे मुक्त हूँ'—इस प्रकार चिन्तन करे। इस प्रकार जो तत्त्वतः जानता है, वह ब्रह्मत्वको प्राप्त करनेयोग्य हो जाता है। मैंने समस्त वेदान्तके सिद्धान्तोंका सार यथार्थतः कहा है। जीव स्वयं—अपने ही कर्मोंसे उत्पन्न होता है, स्वयं ही मरता है और स्वयं ही अवशिष्ट रहता है। यह सब आत्माकी क्रीडा है, आत्माके सिवा कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। यही उपनिषद्—रहस्य है''॥ २६—४३॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय कठरुद्रोपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

देहनाशसे आत्माका नाश नहीं

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति॥ (आत्मप्रबोध० १८)

'जैसे घड़ेका प्रकाशक सूर्य घड़ेके नाश हो जानेपर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देहका प्रकाशक साक्षी (आत्मा) देहके नाशसे नाशको नहीं प्राप्त होता।'